भक्तामर स्तोत्र

ला० मित्रसेन भामचन्द्र जैन

॥ श्री ॥

भक्तामर स्तोत्र

मूल लेखक,—श्रीमन्मानतुङ्गसूरि

पद्यानुवाद,—कविवर हेमराज

भावार्थ,—पं० सुमेरचन्द जैन "उन्निनीषु"

प्रकाशक—

लाο मित्रसैन मामचन्द जैन,

मूल्य सदुपयोग,

बाहरसे मंगानेवाले सज्जन पोष्टेजके लिये टिकट

किसी निम्न पते पर भेजें।

H C. JAIN
R. B. S. Jain Rubber Mills.
LILLOOAH, (Howrah-)

लाο मित्रसैन मामचन्द जैन
चन्द्र भवन, देवबन्द
यू० पी०

प्रकाशक—
ला० मित्र सैन मामचन्द जैन,
चन्द्रभवन देवबन्द
यू० पी०।

मुद्रक—
दुलीचन्द परवार,
"जवाहिर प्रेस"
१६१।१, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

स्वर्गीय लाला प्यारेलालजी जैन।

Jawahir Press Calcutta

समर्पण

स्वर्गीय

पूज्य ला० प्यारेलालजी जैन

की स्मृतिमें

सादर समर्पित

मित्रसैन मामचन्द

विनीत

भक्तामरके प्रभावसे ४८ ताले टूट गये
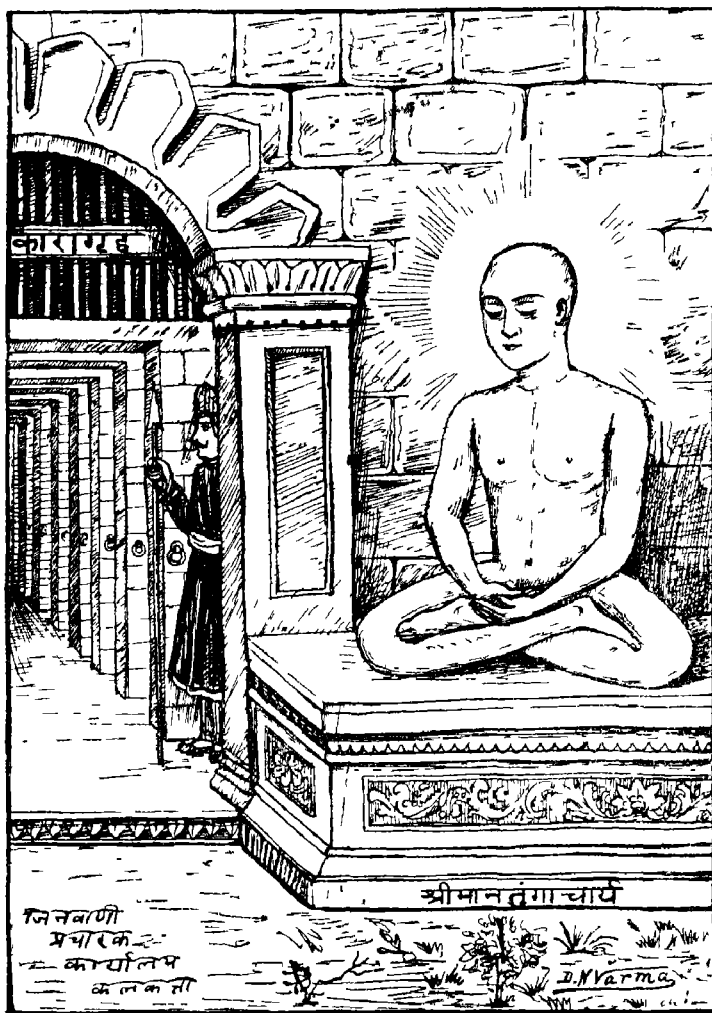
स्वामी मानतुंगाचार्य

संक्षिप्त जीवनी ।

एक समय राजा भोजकी सभामें कालीदासने नाममाला नामकी पुस्तकको लेकर यह घोषणाकी कि—'यह जैनियोंकी रचना नहीं है। धनञ्जय वणिक हैं। वे ग्रंथ-रचना क्या जाने।' इसपर धनञ्जयने उनसे शास्त्रार्थ किया तथा जब कालीदास परास्त होने लगे तब बोले कि हम तुम्हारे गुरु मानतुङ्गसे शास्त्रार्थ करेंगे। विद्वान धनञ्जयका पक्ष प्रबल है, यह बात महाराज भोज समझ चुके थे। परन्तु कालिदासके सन्तोषके लिये उनने अपना दूत मानतुङ्ग स्वामीके पास भेज दिया। दूतने जाकर स्वामी मान-तुङ्गको राजाज्ञा सुनाई। वह बोला—महाराज भोजने आपकी ख्याति सुनकर दर्शनोंकी अभिलाषा प्रगट की है, साथही आपसे दरबारमें चलनेका अनुरोध किया है। कृपया हमारे साथ ही चलनेका कष्ट उठाइये। मुनिराजने उत्तर दिया कि—'भाई! राज सभासे हमें क्या प्रयोजन? जब हम खेती, व्यापार तथा याचना भी नहीं करते हैं तब हमें राजा क्यों बुलावेगा? अतएव कह दो कि हम उनके राजदर्बारमें जाना नहीं चाहते।

उत्तर सुनकर दूत लौट आया और जो कुछ उनने कहा था, राजासे कह सुनाया। राजाने जब लगातार चार बार सेवकोंको

भेजा पर वे नहीं आये, तब पांचवीं बार उन्होंने आज्ञा दी कि जिस तरह हो पकड़ कर हाजिर करो। पश्चात नौकरोंने ध्याना-रूढ़ मानतुङ्ग स्वामीको राज्य-सभामें लाकर खड़ा कर दिया।

स्वामी मानतुङ्गने उपसर्ग समझ कर मौन धारण करना ही उचित समझा। बार २ राजा द्वारा व अन्य व्यक्तियों द्वारा कहने पर भी उनके मुंहसे एक अक्षर नहीं निकला। सब लोग कह कहके थक गये परन्तु लाभ कुछ भी नहीं हुआ। इस पर राजा क्रोधित हो उठे। उन्होंने हथकड़ी बेड़ी डालके अड़तालीस कोठ-रियोंके भीतर बन्दीगृहमें मजबूत ताले लगवाकर मानतुङ्ग स्वामीको क़ैद करा दिया। दरवाज़े पर पहरेदार बैठा दिया गया। तीन दिन तक आचार्य ध्यानमें लीन रहे। चौथे दिन उन्होंने आदिनाथ स्तोत्र काव्यकी रचना प्रारम्भ की। ज्योंहो स्वामीने पूरा स्तोत्र पढ़ा कि हथकड़ी, बेड़ी और सब ताले टूट गये। स्वयं ४८ फाटक खुल पड़े। स्वामी जी बाहर चबूतरे पर आकर विराजमान हो गये। पहरेदारने यह देखकर उन्हें फिर भीतर ले जाकर बन्द कर दिया। पर कई बार ऐसा करनेपर भी वे बार २ बाहर आ विराजते थे। राजाको इस घटनाकी खबर दी गयी। उनने फिरसे बन्द करनेकी आज्ञा दी। राजाज्ञाका दो तीन बार पालन किया गया। अन्तमें महा-त्मा स्वयं राज्य-सभामें उपस्थित हो गये। महात्माके दिव्य शरीरके प्रभावसे राजाका हृदय कांप उठा और राजा तथा कालिदासने मुनिराजका प्रताप देख कर उनसे क्षमा मांगी।

* नमो जिनाय *

श्री मन्मानतुङ्गसूरि विरचित

आदिनाथ स्तोत्र !

शब्दार्थ, भावार्थ, और पद्यानुवादसहित

बसन्ततिलका वृत्तम्।

भक्तामर प्रणत मौलि मणिप्रभाणा-

मुद्योतकं दलित पापतमो वितानं।

सम्यक् प्रणम्य जिन पाद युगं युगादा-

बालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

यः संस्तुतः सकल वाङ्मयतत्व बोधा-

दुद्भूत बुद्धि पटुभिः सुरलोक नाथैः।

स्तोत्रैर्जगत्त्रितय चित्त हरै रुदारैः

स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेंद्रम् ॥२॥

(युग्मम्)

दो०—आदि पुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार।

धरम धुरंधर परम गुरु, नमों आदि अवतार ॥ १ ॥

सुरनत मुकुट रतन छबि करें, अन्तर पाप तिमिर सब हरें।
जिनपद बन्दों मनवचकाय, भव जल पतित उधरन सहाय ॥
श्रुतपारग इन्द्रादिक देव, जाकी थुति कीनी कर सेव।
शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिसप्रभुकी वरणो गुणमाल ।२।

शब्दार्थ—नमस्कार करते हुए देवताओंके मुकुटोंकी जो मणियां हैं, उनकी प्रभाको प्रकाशित करनेवाले, पापों के विनाशक और संसार रूपी समुद्रसे पार उतारने-वाले श्री जिनेन्द्र देवके चरण युगलोंको भली प्रकार नमस्कार करके सम्पूर्ण द्वादशांग रूप जिनवाणीके रहस्य जाननेसे उत्पन्न हुई जो प्रकर्ष बुद्धि, उससे प्रवीण ऐसे देवोंके नाथ इन्द्रोंने तीनों लोकोंके मनके हरण करनेवाले महान् स्तोत्रोंके द्वारा जिस आदि-नाथ भगवानका गुणानुवाद किया है, उसी प्रभुका स्तवन आश्चर्य है कि मैं भी करूंगा ॥ २ ॥

भावार्थ—जिसकी स्तुति द्वादशांगके जाननेवाले इन्द्रने की है उसीका स्तवन मैं भी करूंगा। यह बड़ा आश्चर्य है !

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित पादपीठ,
स्तोतुं समुद्यत मतिर्विगतत्रपोऽहम् !
बालं विहाय जल संस्थित मिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

चौ०—विबुध वंद्य पद मैं मतिहीन,

होनिलज्ज थुति मनसा कोन।

जल प्रतिबिंब बुद्ध को गहै।

शशि मंडल बालक ही चहै ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—देवोंने जिसके सिंहासनकी पूजाकी है, ऐसे हे जिनेन्द्र! मैं अल्पज्ञ होने पर भी लज्जा रहित होकर आपकी स्तुति करनेका प्रयास कर रहा हूं; भला बालकको छोड़कर ऐसा कोन मनुष्य है जो जलमें पड़े हुए चन्द्रमाके प्रतिबिम्बको पकड़नेका साहस करे?

भावार्थ—जिस प्रकार भोला बालक जलमें पड़ी हुई चन्द्रमाकी छायाको पकड़ता है, उसी प्रकार मैं आपका स्तवन करना चाहता हूं, जो बड़ा कठिन है ॥ ३ ॥

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशाङ्ककान्तान्,

कस्तेक्षमः सुरगुरु प्रतिमोऽपि बुद्ध्या।

कल्पान्त काल पवनोद्धत नक्र चक्रं,

को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥

भाषा—गुन समुद्र तुम गुन अविकार,

कहत न सुरगुरु पावै पार।

प्रलय पवन उद्धत जलजंतु,

जलधि तिरै को भुजबलवन्तु ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—हे गुण समुद्र! चन्द्रमाके समान आपके निर्मल गुणों

को बुद्धिसे इन्द्रके समान पुरुष भी कहनेमें असमर्थ है, क्योंकि प्रलयकाल की हवासे उछलते हुए मगर मच्छोंसे जिसमें उत्पाद हो रहा हैं, ऐसे भीषण समुद्रको हाथोंसे तैरनेको कौन पुरुष समर्थ हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं !

भावार्थ—जैसे भीषण समुद्रको कोई पुरुष हाथोंसे नहीं तैर सकता, उसी प्रकार मैं भी आपके गुणोंको नहीं कह सकता ॥ ४ ॥

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश,
कर्तुं स्तवं विगत शक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,-
नाऽभ्येतिकिं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥

भाषा—सो मैं शक्ति हीन थुति करूं,
भक्ति भावबश कछु नहिं डरूं,
ज्यों मृगि निजसुत पालन हेत,
मृगपति सन्मुख जाय अचेत ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—हे मुनियोंके नाथ ! मैं अशक्त होने पर भी आपकी भक्तिके वशसे स्तुति करनेके लिये प्रस्तुत हुआ हूं ? जैसे कि स्नेहके बशीभूत बलहीन हिरणी अपने बच्चे को शेरके पञ्जेसे छुड़ानेके प्रयत्नमें अपनी दुर्बतलाको न सोचकर तैयार हो जाती है ।

भावार्थ—जिस प्रकार हिरणी अपने बालकको शेरके पंजेसे छुड़ाते समय इस बातका ध्यान नहीं रखती कि मैं बलवान् सिंहसे कैसे जीतूंगी ? परन्तु अपने बच्चेके प्रेमके वश होकर शेरसे लड़ना चाहती है, उसी प्रकार यद्यपि मुझमें शक्ति नहीं है, फिर भी आपके प्रेमके वशीभूत हुआ स्तुति करना चाहता हूं ॥ ५ ॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास धाम,
त्वद्भक्तिरेवमुखरी कुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किलमधौ मधुरं विरौति,
तच्चारुचाम्र कलिका निकरैक हेतु ॥६॥

भाषा—मैं शठ सुधी हँसनको धाम,
मुझ तव भक्ति बुलावै राम ।
ज्यों पिक अंब कली परभाव,
मधु ऋतु मधुर करै आराव ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—यद्यपि मैं अल्पज्ञ होनेसे विद्वानोंकी हंसीका पात्र बन सकता हूं, लेकिन जिस प्रकार कोयल बसन्त ऋतुमें आमोंके बौर देखकर कूकना आरम्भ कर देती है उसी प्रकार आपकी भक्ति मुझे बलात् स्तुति करनेके लिये लाचार करती है ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार कोयल और ऋतुओंमें न बोलकर बसन्तमें ही आमोंपर बौर देखकर बोलना शुरु करदेती

है, उसके बोलनेमें मुख्य कारण बौर ही है! उसी प्रकार आपकी स्तुति करनेमें आपकी स्तुति ही प्रधान कारण है।

त्वत्संस्तवेन भव सन्तति सन्निवद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥

तुम जस जंपत जन छिन मांहि,
जनम जनमके पाप नसाहिं।
ज्यों रवि उगैं फटैं ततकाल,
अलिवत नील निशातम जाल ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—हे भगवन्! आपके स्तवनसे जीवधारियोंके संचित जन्म जन्मके पाप क्षणमें विनाशको प्राप्त हो जाते हैं, जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर उसकी किरणोंसे सम्पूर्ण लोकको ढके हुए भौंरेके समान प्रगाढ़ रात्रिका काला अन्धकार शीघ्रतासे नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार आपकी स्तुति करनेसे जीवोंके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥६॥

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात्।

चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु

मुक्ताफलद्युतिमुपैतिननूदबिन्दुः ॥८॥

भाषा—तुव प्रभावत कहूं विचार

होसी यह थुति जनमनहार।

ज्यों जल कमल पत्रपै परै,

मुक्ता फलकी द्युति विस्तरै ॥८॥

शब्दार्थ—हे नाथ ! आप पापोंके नाश करनेवाले हैं ऐसा मानकर अल्प बुद्धिके द्वारा यह स्तोत्र प्रारम्भ किया जाता है सो आपके प्रभावसे यह स्तवन सज्जन पुरुषोंके मनको हरण करनेवाला होगा। अर्थात् सर्वोत्तम काव्यमें इसकी गणना होगी। जैसे कमलके संसर्गसे उसके पत्तेपर पड़ी हुई पानीकी बिन्दु मोतीके समान शोभाको प्राप्त होती है।

भावार्थ—जैसे कमलिनीके पत्तोंपर पड़ी हुई जलकी बूँदें मोती बन जाती हैं, उसी प्रकारसे आपके सम्बन्धसे यह स्तोत्र उत्कृष्ट काव्योंमें गिना जावेगा।

आस्तां तव स्तवनमस्त समस्त दोषं,

त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।

दूरे सहस्र किरणः कुरुते प्रभैव,

पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि ॥९॥

भाषा—तुम गुण महिमा हत दुख दोष,

सो तो दूर रहो सुख पोष।

पाप बिनाशक है तुम नाम,

कमल विकाशी ज्यौं रविधाम ॥९॥

शब्दार्थ—हे जिनेन्द्र ! समस्त दोषों कर रहित आपकी स्तुतिके प्रभावको कौन कह सकता है जब आपके नामकी कथा ही संसारके जीवोंके पापोंको नाश करती है। जिस प्रकार सूर्यकी प्रभा ही कमलोंको प्रकाशमान कर देती है तो सूर्यका क्या कहना ?

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्यकी कांतिसे ही जब कमल खिल जाते हैं तो सूर्यके उदय होने पर तो अवश्य खिलेंगे ही। उसी प्रकार जब आपके नाम मात्रकी कथा करनेसे पाप नष्ट होते हैं, तो स्तुतिसे तो अवश्य नष्ट होंगे ही ॥९॥

नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ,

भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।

तुल्याभवन्ति भवतो ननु तेन किंवा,

भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

भाषा—नहि अचंभ जो होहिं तुरंत,

तुमसे तुमगुण वरणत संत।

जो अधीनको आप समान,

करै न सो निन्दित धनवान ॥१०॥

शब्दार्थ—हे जगद्भूषण ! आपके उत्तम स्तवन करनेवाले मनुष्य आपके ही समान प्रभावशाली होते हैं, तो इसमें अधिक आश्चर्य नहीं है ? यदि योग्य धनो पुरुष अपने आश्रितोंको अपने समान नहीं करे तो उस स्वामी से क्या लाभ ?

भावार्थ—जिस प्रकार योग्य धनी पुरुष अपने आश्रितोंको धनादि द्रव्य देकर अपने समान बना लेते है, उसी प्रकार मैं भी आपकी भक्तिसे तीर्थंकर नाम कर्मका बन्ध कर सकता हूं ॥ १० ॥

दृष्ट्वाभवन्तमनिमेषविलोकनीयं,

नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।

पीत्वापयः शशिकरद्युतिदुग्ध सिन्धोः ॥

क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत् ॥११॥

भाषा—इकटकजन तुमको अविलोय,

और विषै रतिकरै न सोय

को करि क्षीर जलधि जलपान,

क्षार नीर पीवै मतिमान ॥११॥

शब्दार्थ—हे भगवन् टिमकार रहित नयनोंसे देखने योग्य आपका रूप जिसने एक बार देख लिया है, उसकी

आंखें दूसरी जगह आनन्दित कैसे हो सकती है ? भला जिसने चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्वल अमृतरूपी जलका स्वाद पा लिया है, उसे खारे समुद्र का पानी कैसे अच्छा लग सकता है ?

भावार्थ—जो अमृतके समान क्षीर सागरका जल पी लेता है उसे खारे सागरका पानी स्वादिष्ट मालूम नहीं होता, उसी प्रकार जिसने आपका दर्शन कर लिया है, उसे दूसरे देवोंका देखना अच्छा नहीं मालूम होता !

यैः शान्तिराग रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां ।
यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति ॥१२॥

भाषा—प्रभु तुम वीतराग गुणलीन,
जिन परमाणु देह तुम कीन ।
है तितने ही ते परमान,
यातैं तुमसम रूप न आन ॥१२॥

शब्दार्थ—हे त्रिभुवन श्रेष्ठ ! (अर्थात् तीनलोकके शिरोभूषण भूत !) जिन सुन्दर परमाणुओंसे आपके मनोहर शरीरकी रचना हुई है मालूम होता है वे संसारमें उतने ही हैं, क्योंकि आपके समान सुन्दर रूपवाला

दूसरा कोई नहीं है ! अर्थात् आपके समान आपही हैं ।

भावार्थ—यहां अचार्य उत्प्रेक्षा करते हैं कि प्रभो ! संसारमें जितने उत्तम परमाणु थे, उनसे आपका शरीर बन गया तो बताओ आपके समान और कौन सुन्दर हो सकता है ?

वक्त्रं क्वते सुरनरोरगनेत्रहारि,

निःशेषनिर्जित जगत्त्रितयोपमानम् ।

बिम्बं कलङ्कमलिनं क्वनिशाकरस्य,

यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥ १३ ॥

भाषा—कहँ तुम मुख अनुपम अविकार,

सुर नर नाग नयन मनहार ।

कहां चन्द्रमण्डल सकलंक,

दिनमें ढाकपत्र समरंक ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—जो लोग चन्द्रमासे आपके मुखकी उपमा देते है, वे ठीक नहीं करते क्योंकि हे नाथ । देव, मनुष्य, और नाग कुमारोंके मनको हरण करनेवाला तथा सब उपमायें अर्थात् चन्द्रमा कमल आदिको लज्जित करने वाला तीनोंलोकोंमें सर्वोत्कृष्ट आपका मुखमण्डल कहां और कहां बेचारा कलंकी चन्द्रमा जो दिनमें ढाकके फूलके समान सफेद हो जाता है । तब भला

आपके साथ उसकी उपमा कैसे दी जा सकती है।

भावार्थ—आपके मुखको चन्द्रमाकी उपमा देना ठीक नहीं है क्योंकि वह तो कलंकी है, जो प्रतिदिन छिप जाता है, पर आपका मुखमण्डल तो सदैव प्रकाशमान और निष्कलकी है ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण मण्डल शशाङ्क कलाकलाप,

शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तवलङ्घयन्ति ।

ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं

कस्तान्निवारयति संचरतोयथेष्टम् ॥१२॥

भाषा—पूरनचन्द ज्योति छविवंत,

तुम गुन तीन जगत लंघंत ।

एक नाथ त्रिभुवन आधार,

तिन विचरतको करै निवार ॥१४॥

शब्दार्थ—हे त्रिलोकेश्वर! पूर्णमासीके निर्मल चन्द्रमाके समान उज्वल आपके गुणोंने तीनों लोकोंको व्याप्त कर दिया है (अर्थात् फैले हुए हैं)। क्योंकि जो तीनों लोकोंके नाथके आश्रयमें हैं; ऐसे गुणोंको स्वेच्छानुसार विचरण करनेसे कौन रोक सकता है! अर्थात् कोई नहीं!

भावार्थ—जो उत्तम गुण आपमें हैं, उनकी सर्वत्र प्रशंसा होती है। अर्थात् वे तीनों लोकोंमें फैले हुए है ॥ १४ ॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-

र्नीतं मनागपि मनो न विकार मार्गम् ।

कल्पान्तकाल मरुता चलता चलेन,

किं मन्दराद्रि शिखरं चलितं कदाचित् ॥१५॥

भाषा—जो सुरतिय विभ्रम आरंभ,

मन न डिग्यो तुम तौनु अचंभ ।

अचल चलावै प्रलय समीर ।

मेरु शिखर डगमगै न धीर ॥१५॥

शब्दार्थ—हे प्रभो ! देवाङ्गनाओंके द्वारा आपका मन किंचित् विकारको प्राप्त नहीं हुआ तो इसमें क्या आश्चर्य है ! क्या पर्वतोंको हिलानेवाले पवनसे गिरिराज सुमेरुका शिखर हिल सकता है ! अर्थात् नहीं !

भावार्थ—दूसरे ब्रह्मा विष्णु वगैरह देवताओंका मन देवांगनाओंने चलायमान कर दिया परन्तु वे जिनेन्द्रके मनको थोड़ा भी चलायमान नहीं कर सकीं ।

निर्धूमवर्ति रपवर्जित तैलपूरः,

कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटी करोषि ।

गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,

दीऽपोपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥

भाषा—धूम रहित बाती गत नेह,

परकाशै त्रिभुवन घर एह।

बातगम्य नाहीं परचण्ड,

अपर दीप तुम बलै अखण्ड ॥१६॥

शब्दार्थ—हे नाथ! आप उस अलौकिक दीपकके समान है जिसमें धुंआ बत्ती और न तेल ही है, और जो पर्वतोंके चलायमान करनेवाले पवनके कदाचित् भी गम्य नहीं है। इसलिए आप जगत्‌को प्रकाशित करनेवाले अद्वितीय दीपकके समान हैं॥ १६॥

भावार्थ—तेल बत्तीवाला मिट्टीका दीपक थोड़ी सी जगहको प्रकाशित करता है, लेकिन आपका केवलज्ञान रूपी अलौकिक दीपक, जिसमें तेल वगैरह कुछ भी नहीं है, समस्त ससारको प्रकाशित करता है!

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु गम्यः,

स्पष्टीकरोषि सहसा युग पज्जगन्ति।

नाम्भोधरोदरनिरुद्ध महाप्रभावः,

सूर्यातिशायि महिमासि मुनीन्द्र लोके ॥१७॥

भाषा—छिपहु न छिपहु राहुकी छांहि,

जग प्रकाश कहो छिन मांहि।

धन अनवर्त दाह विनि वार,

रवितै अधिक धरो गुणसार ॥१७॥

शब्दार्थ—हे मुनीन्द्र ! राहुसे सूर्य ग्रसा जाता है, बादलोंमें छिप जाता है और प्रतिदिन निकलता है, लेकिन आप उस दिव्य सूर्यके समान हैं, जो न तो कभी अस्त होता है, और न राहुसे ग्रसा जाता है और न बादलोंमें छिप सकता है और आप तो एक ही समयमें तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाले हैं। इसलिए आप सूर्यकी महिमाको भी उल्लंघन करते हैं।

भावार्थ—आप सूर्यसे भी अधिक प्रभावशाली हो ॥ १७ ॥

नित्योदयं दलित मोह महान्धकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्ज मनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगद पूर्व शशाङ्क बिम्बम् ॥१८॥

भाषा—सदा उदित विदलित तममोह,
विघटित मेघ राहु अविरोह।
तुम मुख कमल अपूरब चन्द्र,
जगत विकाशी ज्योति अमंद ॥१८॥

शब्दार्थ—हे भगवन् ! आपका अधिक ज्योतिर्मयी मुखमण्डल उस विलक्षण चन्द्रमाके बिम्बके समान शोभित होता है, जो सदा उदय रहकर मोहरूपी अन्धकारको नष्ट करता है, न राहुसे ग्रसा जाता है और न बादलोंमें

छिप सकता है। ऐसे आप जगतको प्रकाशित करने-
वाले अपूर्व चन्द्रमा हैं।

भावार्थ—आपके मुखकी उपमा चन्द्रमासे भी नहीं दी जा
सकती, क्योंकि वह हीन कान्तिवाला और आपका
मुख महान् कान्तिवाला है।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वतावा।
युष्मन्मुखेन्दु दलितेषु तमः सुनाथः।
निष्पन्नशालि वनशालिनि जीवलोके।
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः ॥१६॥

भाषा—निश दिन शशि रविको नहीं काम,
तुम मुख चन्द्र हरै तम धाम।
जो स्वभावतं उपजं नाज,
सजल मेघ तौ कौनहु काज ॥१६॥

शब्दार्थ—हे नाथ! आपके मुखरूपी चन्द्रमासे अन्धकारके नाश
हो जानेपर रात्रियोंमें चन्द्रमा करके अथवा दिनमें
सूर्य करके क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? जैसे
देशमें पके हुए धान्योंसे भरे हुए खेतमें बरसनेवाले
बादलोंसे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? अर्थात्
कुछ भी नहीं।

भावार्थ—जब खेतोंमें अनाज पक चुके तो पानी बरसनेसे क्या
प्रयोजन सिद्ध होगा? केवल कीचड़ होगी। उसी

प्रकार जब आपके प्रभावसे अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाय तो सूर्य और चन्द्रमासे क्या मतलब सिद्ध हो सकता है ॥१६॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं ।
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ॥
तेजोस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्वं ।
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेपि ॥२०॥

भाषा—जो सुबोध सोहैं तुममाहिं,
हरिहर आदिक में सो नाहिं ।
जो द्युति महा रतनमें होय,
काचखण्ड पावै नहिं सोय ॥२०॥

शब्दार्थ—हे प्रभो ! संसारके पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला जो केवलज्ञान आपके हृदयमें शोभा देता है वैसा हरिहरादिक नायकोंमें नहीं हैं, क्योंकि ठीक ही है, जो प्रकाशमान ज्योति हीरा जवाहिरादिकमें होती हैं, क्या वही प्रकाश कांचके टुकड़ेमें मिल सकता है ? अर्थात् नहीं ॥२०॥

भावार्थ—जो स्वपर पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला केवल ज्ञान आपमें है, वह महादेव विष्णु वगैरह में नहीं है ॥२०॥

मन्येवरं हरिहरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनोहरति नाथ भवान्तरेपि ॥२१॥

नाराच छन्द—

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया,
स्वरूप जाहिदेख वीतराग तू पिछानिया।
कछू न तोहि देखिके जहाँ तुही विशेखिया,
मनोग चित्तचोर और भूलहू न पेखिया ॥२१॥

शब्दार्थ—हे नाथ! मैं महादेव विष्णु आदिका देखना ही अच्छा समझता हूं, जिनके देखनेसे हृदय तुममें संतोष को प्राप्त होता है? लेकिन आपके मनोहारि दर्शनसे क्या? जिससे कि पृथ्वीमें अन्य कोई देव दूसरे जन्ममें भी मन हरण नहीं कर सकता।

भावार्थ—राग द्वेषादि सहित महादेव विष्णु आदिके देखनेसे वीतरागी आपको देखकर हृदय आनन्दको प्राप्त हो जाता है। लेकिन आपके देखनेसे क्या लाभ? जो दूसरी तरफ देखनेको मन भी नहीं जाता।

(ब्याज स्तुति अलंकार)

स्त्रीनां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रा
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।

सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,

प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

भाषा – अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं,

न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं,

दिशा धरंत तारिका अनेक कोटिको गिनै,

दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥२२॥

शब्दार्थ—सैकड़ों मातायें पुत्रोंको उत्पन्न करती है, लेकिन तेरे समान प्रभावशाली पुत्र बिरली ही एक माता उत्पन्न करती है। क्योंकि सब दिशायें अनेक तारोंको पैदा करती है, परन्तु दैदीप्यमान सूर्य्यको केवल एक पूर्व दिशाही उत्पन्न करती है।

भावार्थ—संसारमें प्रतिदिन सैकड़ों पुत्र उत्पन्न होते हैं, लेकिन आप जैसे पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाली बिरली ही मातायें होती है। जैसे सूर्यका प्रकाश तो सब दिशाओंमें होता है, लेकिन उत्पन्न करनेवाली पूर्व दिशा ही होती है ॥ २२ ॥

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस

मादित्य वर्णममलं तमसः पुरस्तात्।

त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं।

नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥२३॥

भाषा—पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो,
कहैं मुनीश अंधकारनाश को सुभान हो,
महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके,
न और मोहि मोख पंथ देहि तोहिं टालके ॥२३॥

शब्दार्थ—हे मुनियोंके नाथ! मुनिजन तुम्हें परम पुरुष और अंधकारके आगे सूर्यके समान निर्मल मानते हैं। तुम्हें ही भली प्रकार पा करके मृत्युको जीतते हैं! इसलिए तुम्हारे सिवा दूसरा कोई मोक्षका मार्ग नहीं है ॥२३॥

भावार्थ—मुनीश्वर आपको पुरुषोत्तम निर्मल और मृत्युजंय कहते है, क्योंकि संसारी जीव आपके उपदेशको पाकर जन्म, बुढ़ापा आदिको नाश कर देते हैं! इसलिए सच्चा मुक्तिका मार्ग आप ही बता सकते हैं ॥२३॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्य माद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनङ्गकेतुम् ।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,
ज्ञान स्वरुप ममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

भाषा—अनन्त नित्य चित्त की अगम्य रम्य आदि हो,
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो,
महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो,
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥२४॥

शब्दार्थ—हे प्रभो ! सज्जन पुरुष तुमको अक्षय, परम ऐश्वर्य संयुक्त (ज्ञानके द्वारा सर्व व्यापक) चिन्तवनमें न आनेवाले, असंख्यगुणोंवाले आदि तीर्थंकर सकल कर्म रहित, सब देवोंके स्वामी अर्थात् ईश्वर, अन्त-रहित कामदेवके नाश करनेके लिये केतु रूप, ध्यानियों के प्रभु, योगादिको जाननेवाले पर्यायकी अपेक्षा अनेक रूप, जीव द्रव्यकी अपेक्षा एक रूप, अद्वितीय केवल ज्ञान स्वरूप और कर्म रहित निर्मल कहते हैं।

भावार्थ—उत्तम पुरुष आपके अनेक गुणोंकी अनेक नामोंसे स्तुति करते हैं।। २४ ।।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधा—
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रय शङ्करत्वात् ।
धातासि धीर शिवमार्ग विधेर्विधानात्
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषो तमोऽसि ॥२५॥

भाषा—तुम्ही जिनेश बुद्ध हो सुबुद्धिके प्रमानतैं,
तुम्ही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतैं,
तुम्ही विधाता है सही, सुमोख पंथ धारतैं,
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ॥२५॥

शब्दार्थ—हे भगवन ! देवोंने आपके केवल ज्ञानकी पूजाकी है इस कारण आप ही बुद्धदेव हो, तीन लोकके जीवोंको सुख देनेवाले हो इस कारण आप ही शङ्कर है।

और आपने भली प्रकार मोक्षके मर्मका उपदेश दिया है अतः आपही विधाता हैं। हे सर्वश्रेष्ठ ! आप सार्थक नामवाले पुरुषोत्तम है ॥ २५ ॥

भावार्थ—क्षणिक वादको माननेवाला बुद्ध वास्तवमें बुद्ध नहीं है, क्योंकि आपके केवल ज्ञानकी पूजा देवोंने की है, इससे आपही बुद्ध है। पृथ्वीका नाश करनेवाले शंकर, शंकर कहलानेके योग्य नहीं है, सुखकाल होनेसे आपही शंकर है, कामके वशीभूत हुआ ब्रह्मा विधाता कहलानेके योग्य नहीं है, मोक्षके मार्गका व्याख्यान करनेसे आपही विधाता है। और गोपियोंमें रमण करनेवाला नरोत्तम कैसे कहला सकता है, इसलिए वास्तवमें आप ही पुरुषोत्तम है।

तुभ्यं नमस्त्रि भुवनार्त्तिहरायनाथ,
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रि जगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय ॥२६॥

भाषा—नमो करूं जिनेश तोहि आपदा निवार हो,
नमों करूं सुभूरि भूमि लोकके सिंगार हो।
नमों करूं भवाब्धि नीर राशि शोष हेतु हो,
नमों करूं महेश तोहि मोख पंथ देतु हो ॥२६॥

शब्दार्थ—हे त्रिभुवन संकट मोचन ! (तीन लोककी पीड़ाको

हरण करनेवाले) हे विश्वके विमल आभूषण ! (पृथ्वी तलके निर्मल आभूषण स्वरूप) हे त्रैलोकेश्वर ! (तीन लोकके ईश्वर) ! हे भवाब्धि भञ्जन संसार समुद्रको सोखनेवाले ! हे प्रभो आपको मेरा नमस्कार हो ॥२६॥

भावार्थ—विविध गुणोंसे प्रभुको नमस्कार किया है ॥२६॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-

स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।

दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः

स्वप्नान्तरेपि न कदाचिद् पीक्षितोसि ॥२७॥

भाषा—तुम गुण पूरन गुणगण भरे,

दोष गर्वकरि तुम परिहरे,

और देवगण आश्रय पाय,

स्वप्न न देखे तुम फिर आय ॥२७॥

शब्दार्थ—हे मुनीश्वर ! सम्पूर्ण गुण आपमें अधिकतासे समाये हुए हैं, और अनेक देवताओंके आश्रित होनेसे अभिमानी दोषोंने आपकी तरफ स्वप्नमें भी निगाह नहीं की है, तो बताओ इसमें कोनसा आश्चर्य है ॥२७॥

भावार्थ—जिनेन्द्र भगवानमें केवल गुण ही हैं, दोषोंका लव-लेश भी नहीं है ॥२७॥

उच्चैरशोक तरु संश्रितमुन्मयूख-

माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।

स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त तमो वितानं,

बिम्बं रवेरिवपयोधर पार्श्ववर्ति ॥२८॥

भाषा—तरु अशोक तरु किरण उदार,

तुमतन शोभित है अविकार।

मेघनिकट ज्यों तेज फुरंत,

दिनकर दिपै तिमिर निहंत ॥२८॥

शब्दार्थ – ऊंचे अशोक वृक्षके नीचे स्थित और ऊपरकी तरफ निकली है किरणें जिसकी, ऐसा आपका निर्मल रूप, ऊपरको प्रकट रूपसे फैली हुई किरणें जिसकी तथा अंधकारको नष्ट करनेवाले ऐसे बादलोंके पासमें रहने-वाले सूर्यके बिम्बके समान शोभित होता है।

भावार्थ—जिस प्रकार बादलोंमें सूर्य अच्छा मालूम होता है उसी प्रकार अशोक वृक्षके नीचे आपका शरीर शोभित होता है। (इसमें पहले प्रातिहार्यका कथन है) ॥२८॥

सिंहासने मणिमयूख शिखाविचित्रे,

विभ्राजते तववपुः कनकावदातम् ।

बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं,

तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मैः ॥२९॥

भाषा—सिंहासन मणि किरन विचित्र,

तापर कंचन वरण पवित्र ।

तुम तन शोभित किरन बिथार,

ज्यों उदयाचल रवितम हार ॥२६॥

शब्दार्थ—हे जिनेन्द्र ! मणियोंकी किरण पंक्तिसे चित्र विचित्र सिंहासनपर स्वर्णके समान मनोहर आपका शरीर ऊंचे उदयाचलके शिखरपर आकाशमें सूर्यके बिम्बकी तरह अत्यन्त शोभित हो रहा है ॥२६॥

भावार्थ—जिस प्रकार उदयाचल पर सूर्यका विम्ब शोभा देता है, उसी प्रकार स्वर्णमयी सिंहासनपर आपका शरीर शोभित होता है। (इसमें दूसरे प्रातिहार्यका कथन है ॥२६॥

कुन्दावदातचलचामर चारु शोभं.

विभ्राजते तव वपुः कलधौत कान्तम् ।

उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झर वारिधार-

मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम ॥३०॥

भाषा—कुन्दु पुहुप सितचमर ढुरंत,

कनक वरन तुमतन शोभंत,

ज्यों सुमेरुतट निर्मल कांति,

झरना झरै नीर उमगांति ॥३०॥

शब्दार्थ—हे जिनेन्द्र ! ढुरते कुन्दके समान उज्वल चँवरोंसे मनोहर हो रही है शोभा जिसकी, स्वर्णके समान आपका रमणीय शरीर निकले हुए चंद्रमाके समान सफेद जलधारा जिसमें बह रही है ऐसे स्वर्णमयी सुमेरु पर्वतके ऊंचे तटोंके समान शोभित होता है।३०।

भावार्थ—जिस प्रकार सुमेरुपर्वतसे निर्मल झरना झर रहा हो इस प्रकार आपके शरीरपर श्वेत चँवर ढुरते हुए शोभित होते हैं। (इसमें तीसरे प्रातिहार्यका कथन है)

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त,

मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकर प्रतापम्।

मुक्ताफल प्रकरजाल विवृद्धशोभम्,

प्रख्यापयत्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

भाषा—ऊंचे रहै सूर दुति लोप,

तीन छत्र तुम दिपैं अगोप।

तीन लोककी प्रभुता कहैं,

मोती झालर सौं छवि लहैं ॥३१॥

शब्दार्थ—हे नाथ ! चंद्रमाके समान रमणीय ऊपर लगे हुए तथा जिन्होंने सूर्यके प्रतापको रोक दिया है और मोतियोंके समूहकी रचनासे बढ़ी है शोभा जिनकी ऐसे आपके तीन छत्र तीन लोकका परमेश्वरपना प्रकट करते हुए शोभित होते है।

भावार्थ—भगवानके मस्तकपर लगे हुए तीन छत्र यही बतलाते हैं कि आपही तीन लोकके परमेश्वर हैं ॥३१॥ (इसमें चौथा प्रातिहार्यका कथन है)

गम्भीर तारख पूरित दिग्विभाग,

स्त्रैलोक्य लोक शुभसङ्गमभूतिदक्षः ।

सद्धर्मराज जयघोषण घोषकः सन्,

खेदुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

भाषा—दुन्दुभी शब्द गहर गम्भीर,

चहुंदिशि होय तुम्हारे धीर ।

त्रिभुवन जन शिव संगम करैं,

मानो जय जय रव उच्चरैं ॥३२॥

शब्दार्थ—हे परमेश्वर ! दशो दिशाओंमें गम्भीर और ऊंचे शब्दोंमें गूंजनेवाला तथा तीन लोकके मनुष्योंको शुभ समागमकी विभूति देनेमें चतुर, और आपका यशोनाद करनेवाला दुंदुभी बाजा आकाशमें तीर्थंकर देवकी विजय घोषणाको प्रकट करता हुआ गमन करता है ।

भावार्थ—शमवशरणमें बजते हुए दुंदुभी बाजे तीर्थंकर देवकी विजय घोषणा कर रहे हों । ऐसा मालूम होता है । (इसमें पांचवा प्रातिहार्य है) ॥३२॥

मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात,
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दु शुभमन्द मरुत्प्रयाता,
दिव्यादिवः पतति ते वयसां ततिर्वा ॥३३॥

भाषा—मंद पवन गंधोदक इष्ट,
विविध कल्पतरु पुहुप सुवृष्ट ।
देव करैं विकसित दल सार,
मानो द्विज पंकति अवतार ॥३३॥

शब्दार्थ—हे नाथ ! गंधोदककी बूंदोंसे शोभनीक, शीतल मंद सुगंध वायुके चलनेसे ऊपरकी तरफ मुख किए हुए दिव्य ऐसी (फूलोंका मुंह ऊपर डंठल नीचे) मंदार सुन्दरु मेरु, सुपारिजात, संतानक आदि कल्प वृक्षोंके फूलोंकी वर्षा आकाशसे गिरती हुई ऐसी मालूम होती हैं मानो आपके मुखसे दिव्य ध्वनि खिर रही हो ।

भावार्थ—आकाशसे होनेवाली दिव्य फूलोंकी वर्षा ऐसी मालूम होती है मानों भगवानकी वाणी ही खिर रही हो ।

शुम्भत्प्रभावलयभूरि विभा विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकर निरन्तर भूरि संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम सौम्या ॥३४॥

भाषा—तुमतन भामण्डल जिनचंद,

सब दुतिवंत करत है मंद।

कोटि शंख रवि तेज छिपाय,

शशि निर्मल निशि करै अछाय ॥३४॥

शब्दार्थ—हे जिनेश्वर ! प्रकाशमान सघन सैकड़ों सूर्योंके समान आपके शोभायमान भामण्डलकी अतिशय प्रभा तीन लोकके प्रकाशमान पदार्थोंकी कांतिको लज्जित करती हुई चद्रमाके समान होनेपर भी अपनी दीप्तिके द्वारा रात्रिको जीतती है ॥३४॥

भावार्थ—यह विरोधाभास अलंकार है। अर्थात् भामण्डलकी कांति सैकड़ों सूर्यके समान होनेपर भी आताप करनेवाली नहीं है, किंतु चंद्रमाके समान शीतल है और प्रकाशमान होनेसे रात्रिके अंधकारको नहीं होने देती। (इसमें सातवां प्रातिहार्य है) ॥३४॥

स्वर्गापवर्ग गममार्ग विमार्गणेष्टः,

सद्धर्म तत्वकथनैक पटुस्त्रिलोक्याः।

दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थ सर्वे,

भाषा स्वभाव परिणाम गुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥

भाषा—स्वर्गमोख मारग संकेत,

परम धरम उपदेशन हेत।

दिव्य वचन तुम खिरै अगाध,

सब भाषा गर्भित हित साध ॥३५॥

शब्दार्थ—हे जिनदेव ! स्वर्ग और मोक्ष मार्गके अन्वेषण करनेमें प्रवीण तथा तीन लोकके समीचीन धर्मके तत्वोंकी कथनीमें चतुर और निर्मल अर्थ एवं सम्पूर्ण भाषा स्वभाव परिणमन करनेवाली आपकी दिव्य ध्वनि होती है ॥३५॥

भावर्थ—भगवानकी भाषाको दिव्यध्वनि कहते हैं, उसमें यह चमत्कार होता है कि सुननेवाले सम्पूर्ण जीव सरलतया अपनी भाषामें समझ लेते हैं (इसमें आठवां प्रातिहार्य है) ॥३५॥

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती,

पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ ।

पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्रधत्तः,

पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

दोहा—विकसित सुवरन कमल दुति, नखदुति मिलि चमकाहिं ।

तुमपद पदवी जहँ धरौं, तंह सुर कमल रचाहिं ॥३६॥

शब्दार्थ—हे जिनेन्द्र ! फूले हुए सोनेके नवीन कमल समूहके सदृश कान्ति धारण करनेवाले चारों और फैली और उछलती हुई नखोंकी किरणोंके समूह कर सुन्दर ऐसे

आपके चरण कमल जहाँ पर पग रखते हैं, वहाँ पर देवगण कमलोंकी रचना कर देते हैं ॥३६॥

भावार्थ—जहाँ जहाँ भगवान चरण रखते हैं, तहाँ तहाँ पर देवता कमलोंकी रचना करते हैं ॥३६॥

इत्थं यथा तव विभूति रभूज्जिनेद्र,
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।
याद्दक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
ताद्दक्कुतो ग्रह गणस्य विकाशिनोऽपि ॥३७॥

भाषा—जैसी महिमा तुम विषै,
और धरै नहिं कोय।
सूरजमें जो जोत है,
नहिं तारागण होय ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—हे जिनेन्द्र ! धर्मोपदेश देते समय जैसी विभूति आपकी हुई वैसी महादेव ब्रह्मा आदि दूसरे देवताओंकी नहीं हुई, क्योंकि जैसी अन्धकारको नाश करनेवाली प्रभा सूर्यमें होती है, वैसी प्रभा प्रकाशमान तारागणोंकी क्या हो सकती है ? अर्थात नहीं !

भावार्थ—जैसे तारागण चमकनेवाले अवश्य हैं, परन्तु सूर्यके समान प्रभावशाली नहीं, उसी प्रकार महादेव ब्रह्मा वगैरह देव हैं तो भी आपकी समवशरण जैसी विभूतिको धारण नहीं कर सकते ॥ ३७ ॥

श्च्योतन्मदाविलविलोल कपोलमूल,

मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।

ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं,

दृष्ट्वाभयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

षट्पद—मद अविलिप्त कपोल मूल, अलिकुल झंकारैं ।
तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अतिधारैं ॥
काल वरन विकराल, कालवत सनमुख आवै ।
ऐरावत सो प्रबल, सकल जनभय उपजावैं ॥
देखि गयंद न भय करें, तुम पद महिमा लीन ।
विपति रहित संपति सहित, वरतें भक्त अदीन ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—हे नाथ ! झरते हुए मदसे जिसके गंडस्थल मलीन और चंचल हो रहे हैं। और उनपर उन्मत्त हुए भौंरें आकर अपने शब्दोंसे जिसका क्रोध अधिक बढ़ा रहे हैं, ऐसे ऐरावत हाथीके समान उद्धत हाथीको (अंकुशादिको न मानने वाले) अपनी तरफ आते हुए देख आपके सेवकोंको भय नहीं होता ॥ ३८ ॥

भावार्थ—मतवाले हाथीको देखकर भी आपके भक्तजन भयभीत नहीं होते हैं !

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-

मुक्ताफल प्रकर भूषित भूमिभागः ।

बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,

नाक्रामति क्रम युगाचल संश्रितं ते ॥३९॥

भाषा—अतिमदमत्त गयंद कुम्भस्थल नखन विदारै,

मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै।

बांकी दाढ़ विशाल, वदनमें रसना लोलै।

भीम भयानक रूप देखि, जन थरहर डोलै ॥

ऐसे मृगपति पगतलैं, जो नर आयो होय।

शरण गहै तुम चरणकी बाधा करै न सोय ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—हे भगवन ! विदारे हुए हाथियोंके मस्तकोंसे जो रक्त से भीगे हुए उज्वल मोती पड़ते हैं, उनके समूहसे जिसने पृथ्वीको शोभित कर दिया है, और आक्रमण, करनेके लिये बांधी है चौकड़ी जिसने ऐसा सिंह भी आपके चरण रूपी पर्वतोंका आश्रय लेनेवाले मनुष्यपर प्रहार नहीं करता !

भावार्थ—आपके भक्तपर भयानक सिंह भी आक्रमण नहीं करते ॥ ३९ ॥

कल्पान्तकालपवनोद्धत वह्निकल्पं,

दावानलं ज्वलितमुज्वलमुत्स्फुलिंगम्।

विश्वंजिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,

त्वन्नाम कीर्तन जलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥

प्रलय पवनकर उठी आग जो तास पटतर,
बमैं फुलिंग शिखा उतंग पर जलै निरंतर।
जगत समस्त निगल्ल भस्मकर है गी मानों,
तडत डाट दव अनल जोर चहुं दिशा उठानों ॥
सो इक छिनमें उपसमैं, नाम नीर तुमलेत।
होय सरोवर परिनमैं विकसित कमलसमेत ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—हे भगवन्! प्रलयकालके पवनसे उत्तेजित हुई अग्निके समान जिसके फुलिंगे ऊपरको उड़ रहे हैं, ऐसी जलती हुई उज्वल और सम्पूर्ण संसारको नाश करनेकी है इच्छा जिसकी, ऐसी सामने आती हुई दावाग्निको आपके नामका कीर्तनरूपी जल शान्त कर देता है।

भावार्थ—आपके गुणानुवाद करनेसे दावाग्नि भी कुछ नहीं कर सकती!

रक्तेक्षणं समद कोकिलकण्ठनीलं,
क्रोधोद्धतं फणिन मुत्फण मापतन्तम्।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्त शंक-
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

कोकिल कंठ समान, श्यामतन क्रोध जलंता।
रक्त नयन फुंकार मार विषकण उगलंता ॥
फणको ऊंचा करै, वेगही सम्मुख धाया।

तबजन होय निशंक देख फणिपतिको आया।
जो चांपै निज पगतलैं, व्यापै विष न लगार॥
नाग दमन तुम नामकी है जिनके आधार॥ ४१॥

शब्दार्थ—हे जिनेश्वर! जिस पुरुषके हृदयमें तुम्हारे नामकी गरुण मणिहै, वह पुरुष अपने पैरोंसे लाल नेत्रवाले मदोन्मत्त कोयलके कण्ठके समान काले, क्रोधसे उद्धत हुए, और डसनेके लिये फण उठाये हुए सांपपर निडर होकर पांव देकर चला जाता है।

भावार्थ—आपके नाम स्मरण करनेवालोंको भयंकर सांपोंका कुछ भय नहीं होता॥ ४१॥

वल्गत्तुरंग गज गर्जित भीमनाद,
माजौबलं बलवता मपि भूपतिनाम्।
उद्यद्दिवाकर मयूख शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशुभिदा मुपैति॥

भाषा—जिस रणमाहिं भयानक शब्दकर रहे तुरंगम।
घनसे गज गरजाहिं मत्त मानों गिरिजंगम॥
अति कोलाहल माहिं बात जहँ नहिं सुनीजै,
राजनको परचंड, देख बल धीरज छीजै।
नाथ तिहारे नाम तैं सो छिनमाहिं पलाय।
ज्यों दिन कर परकाश तैं अंधकार विनशाय॥४२॥

शब्दार्थ—हे भगवन! रण संग्राममें आपके नामका कीर्तन करने

से बलवान राजाओंका युद्ध करते हुए घोड़ों और हाथियोंकी गर्जनासे जिसमें भयानक शब्द हो रहे है, ऐसा सैन्य भी, उदय हुए सूर्यकी किरणोंके अग्र-भागसे नष्ट हुए अन्धकारके समान शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्यके उदय होनेपर अंधकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार रणसंग्राममें आपका गुणानुवाद करने वाला राजाओंकी बड़ी २ विशाल सेनाओंको भी परास्त करके विजय प्राप्त करता है ॥ ४२ ॥

कुन्ताग्रभिन्नगज शोणित वारिवाह,
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजित दुर्जयजेयपक्षा,
स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

भाषा मारैं जहां गयंद कुम्भ हथियार विदारैं,
उमगै रुधिर प्रवाह बेग जलसम विस्तारैं ॥
होय तिरन असमर्थ महा योधा बलपूरे ।
तिसरनमें जिन तोर भक्त जे हैं नरसूरे,
दुर्जय अरिकुल जीतके, जय पावै निकलंक ॥
तुम पद पंकज मन बसै ते नर सदा अशंक ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—हे जिनेश्वर! बरछीकी नोकोंसे छिन्न-भिन्न हुए हाथियोंके रक्त रूपी जल प्रवाहमें बहते हुए और

उसको तैरनेके लिये आतुर हुए योद्धाओंसे जो भया-
नक हो रहा है ; ऐसे भीषण संग्राममें आपके चरण
कमल रूपी वृक्षका आश्रय लेनेवाले पुरुष अत्यन्त
कठिन ऐसे शत्रुओंको जीतते हुए विजय प्राप्त
करते है।

भावार्थ—आपके चरण कमलोंका आश्रय लेनेवाले पुरुष भीषण
संग्राममें विजय पाते हैं !

अम्भो निधौ क्षुभित भीषण नक्र चक्र,
पाठीनपीठ भयदोल्वण वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्ग शिखरस्थित यान पात्रा—
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति।४४।

नक्र चक्र मगरादि मच्छकरि भय उपजावै,
जामैं बड़वा अग्नि दाहतैं नीर जलावै।
पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी,
गरजै अति गंभीर लहरकी गिनति न जाकी।
सुखसों तिरैं समुद्रको, जे तुम गुन सुमराहिं
लोल कलोलनके शिखर पार यान ले जाहिं॥ ४४॥

शब्दार्थ—हे जिनेश्वर! आपके स्मरण करनेसे भीषण मगर,
घड़ियाल विशाल मछलियों, पीठों तथा भयंकर
बड़वाग्नि करके क्षुभित समुद्रमें भयंकर भाटोंके
समूहमें जिनके जहाज पड़े हुए हैं, ऐसे पुरुष निर्भय
होकर समुद्र पारकर लेते हैं!

भावार्थ—आपका नाम स्मरण करनेवाले भीषण समुद्रको सरलतासे पारकर लेते हैं ॥ ४४ ॥

उद्‌भूत भीषण जलोदरभार भुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत जीविताशाः ।
त्वत्पादपङ्कजरजोऽमृतदिग्धदेहाः,
मर्त्याभवन्ति मकरध्वज तुल्यरूपा ॥४५॥

महा जलोदर रोग भार पीड़ित नर जे है,
बात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहै हैं,
सोचत रहैं उदास नाहिं जीवन की आशा,
अति घिनावनी देह धरै दुर्गंधि निवासा,
तुम पद पंकज धूलिको जो लावैं निज अंग,
ते निरोग शरीर लहि छिनमें होय अनंग ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—हे वीतराग ! उत्पन्न हुए भयानक जलोदर रोगके भारसे बढ़ गया है पेट जिनका और शोचनीय दशाको प्राप्त होकर जीनेकी आशा छोड़ बैठे हैं, ऐसे पुरुष भी आपके चरणोंकी धूलि रूपी अमृत गुटिका (बटी) का सेवन करनेसे कामदेवके समान सर्वाङ्ग सुन्दर और उत्साह सम्पन्न हो जाते हैं ॥४५॥

भावार्थ—आपके चरणोंकी सेवा करनेसे असाध्य रोग भी दूर होकर निरोग शरीर प्राप्त हो जाता है ॥ ४५ ॥

आपादकण्ठमुरु शृङ्खलवेष्टिताङ्गा,
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः ।
त्वन्नाममंत्र मनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगत बन्धभया भवन्ति ।४६।

पांव कंठ तें जकर बांध सांकल अतिभारी ।
गाढी बेड़ी पैर मांहि जिन जांघ बिदारी ॥
भूख प्यास चिंता शरीर दुखजे बिल लाने,
सरन नांहिं जिन कोय भूपके बंदी खाने,
तुम सुमरत स्वयमेव ही बंधन सब खुल जाहिं,
छिनमें ते संपति लहैं चिंता भय बिनसाहिं ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—हे जिनदेव ! जिनके शरीर पांवसे लेकर गले तक बड़ी बड़ी सांकलोंसे जकड़े हुए है, और बड़ी बड़ी बेड़ियोंके पहिरनेसे जिनकी जंघायें छिल गई हैं, ऐसे मनुष्य आपके नाम रूपी मंत्रका स्मरण करनेसे तत्काल बंधनोंसे रहित हो जाते हैं।

भावार्थ—आपके नाम स्मरण करनेसे बेड़ियोंसे जकड़े हुए पुरुष भी तत्काल बन्धनोंसे छूट जाते हैं ॥ ४६ ॥

मत्तद्विपेन्द्र मृगराज दवानलाहि,
संग्राम वारिधि महोदर बंधनोत्थम् ।
तस्याशु नाश मुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ।४७।

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल,
फणपति रण परचण्ड नीर निधि रोग महाबल।
बंधन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै,
तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै।
इस असार संसारमें शरन नाहिं प्रभु कोय।
यातैं तुम पद भक्तको भक्ति सहाई होय॥ ४७॥

शब्दार्थ—जो बुद्धिमान् आपके इस स्तोत्रको पढ़ता है, अध्ययन करता है, उसके मदोन्मत्त हाथी, सिंह, अग्नि, सर्प, संग्राम, महोदर रोग, और बन्धन इन आठ कारणोंसे उत्पन्न हुआ भय स्वमेव शीघ्र ही नाशको प्राप्त हो जाता है॥ ४७॥

भवार्थ—इस स्तोत्रका ध्यान पूर्वक पाठ करनेवाले पुरुषके किसी प्रकारका संकट नहीं होता। यदि अशुभ कर्मके उदयसे हो भी जाय तो तत्काल नष्ट हो जाता है॥ ४७॥

स्तोत्र स्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां,
भक्त्यामया रुचिरवर्ण विचित्रपुष्पाम्।
धत्तेजनो य इह कण्ठ गतामजस्रं,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः।४८।

यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुनन संवारी।
विविध वर्णमय पहुप गूंथमें भक्ति विथारी।
जे नर पहिरे कंठ भावना मन में भावैं,

मानतुङ्ग ते निजाधीन शिव लक्ष्मी पावै,
भाषा भक्तामर कियो हेमराज हित हेत,
जे नर पढ़ैं सुभावसौं ते पावें शिव खेत ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—हे जिनेन्द्र! इस संसारमें मेरे द्वारा भक्ति पूर्वक आपके अंनत चतुष्ठयादि गुणों करके गूंथी हुई, मनोहर आकारादि कर जड़ित विविध पुष्पोंवाली कण्ठ में पड़ी हुई तुम्हारे स्तोत्र रूपी मालाको जो पुरुष सदैव धारण करता है, उस पृज्य पुरुषको (मान तुंग आचार्य को) राज्य संपदा और मोक्ष रूपी लक्ष्मी विवश होकर प्राप्त होती है ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जैसे पुष्प मालाके पहिरनेसे शरीर शोभित होता है। उसी प्रकार इस स्तोत्र रूपी मालाके पहिरनेसे राज्य सम्पदा और मोक्ष रूपी लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है। अर्थात् इस स्तोत्रके पाठ करनेवाले पुरुषको मानवांछित सम्पदा प्राप्त होती है ॥ ४८ ॥

इति आदिनाथ स्तोत्रं सम्पूर्णम्।

दोहा

मानतुङ्ग अति तुंग कवि, संस्कृत शब्द विशाल।
शब्दार्थ पढ़कर सुगम, हिये धरो गुणमाल ॥ १ ॥
जे नर प्रति दिन भावसों, प्रभु स्तुति चित लाय।
"उन्निनीषु" भुंजें सुखद, मनवांछित फल पाय ॥ २ ॥